अध्याय : 1

विषय-प्रवेश

अध्याय : 1

विषय-प्रवेश

भूमिका

प्रकृति और मानव का अन्योन्य सम्बन्ध है। मानव वस्तुतः प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ वरदान ही है। प्रकृति का एक महत्वपूर्ण लक्षण है - परिवर्तनशीलता। दिन-रात में परिवर्तित होता है। रात दिन में परिवर्तित होती है। ऋतुओं में भी निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। परिवर्तन सृष्टि का अटल एवं सहज गुणधर्म है। मानव जीवन में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। बचपन के बाद युवावस्था, युवावस्था के बाद प्रौढावस्था, प्रौढावस्था के बाद वृध्दावस्था स्वाभाविक रूप से आती है। परन्तु मनुष्य कभी-कभी अपने जीवन में बुध्दि, विचार, भावना तथा परिस्थिति के अनुसार अपने विचार-आचार, रहन-सहन आदि, में परिवर्तन करता रहता है। जीवन का दूसरा नाम ही परिवर्तन है। मानव संस्कृति-सम्पन्न प्राणी होने के कारण वह अपने जीवन को सुचारू एवं सुंदर तथा संयमित एवं सुविकसित बनाने के लिए विविध मूल्यों की निर्मिती करता है। बुध्दिजीवी होने के कारण वह बुध्दि के बल पर तर्क के द्वारा निरन्तर सोचता रहता है और निर्मित जीवन-मूल्यों को नये सिरे से देखता हैं । इसीकारण ये मूल्य प्रसंगवश या कुछ कारणों से परिवर्तित होते हैं। मूल्यों का यह परिवर्तन दोनों के अर्थात् नारी और पुरुष के जीवन में परिलक्षित होता है। मूल्य परिवर्तन कभी-कभी उनके जीवन के लिए उपादेय भी साबित होता है, तो कभी-कभी यह परिवर्तन उनके जीवन में एक अलग मोड़ निर्माण करता है। परिणामतः नये मूल्यों का निर्माण होता हैं। मूल्यों का यह विवेचन, विश्लेषण साहित्यिक विधाओं में पाया जाता है, क्योंकि साहित्य मानव जीवन को उद्घाटित करता है। इसी कारण साहित्य की विधाओं में मानव जीवन-मूल्यों का चित्रण स्वाभाविक रूप

से आता है। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि विधाओं में जीवन-मूल्यों का चित्रण किया जाता है। लेकिन उपन्यास एक ऐसी साहित्य-विधा है, जिसमें विस्तृत रूप में मानव-जीवन का चित्रण कुशलता के साथ किया जाता है। अतः उपन्यासों में मूल्य परिवर्तन रूपायित होता रहता है। दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों में भी विभिन्न परिवर्तित मूल्यों को रूपायित करने की कोशिश की गई है, ऐसा दृष्टिगोचर होता है। हमारे लघु-शोध-प्रबन्ध का मूल उद्देश्य दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों में प्रतिबिम्बित नारी-पुरुषों के परिवर्तित जीवन-मूल्यों को विवेचित विश्लेषित करना है।

मूल्य : व्युत्पत्तिमूलक अर्थ

वर्तमान काल में "मूल्य" शब्द बहु-चर्चित शब्द है। इस शब्द का आगमन हिन्दी में संस्कृत भाषा से हुआ है। संस्कृत की "मूल" धातु में "यत" प्रत्यय जोडने से 'मूल्य' शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। संस्कृत हिन्दी कोश के अनुसार इस शब्द का अर्थ है - "किसी वस्तु के विनिमय में दिया जानेवाला धन, कीमत, मजदूरी, बाजार-भाव आदि।"[1]

"आज मूल्य शब्द अंग्रेजी के 'Value' शब्द का पर्याय माना जाता है। 'Value' शब्द का प्रयोग सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, व्यक्तिवादी, आध्यात्मिक, आदर्शवादी, भोगवादी आदि सभी क्षेत्र में स्वीकृत व्यवहार के लिए होने लगा है।"[2] अर्थात् मूल्य शब्द का अर्थ विस्तृत एवं व्यापक हुआ है। दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र, साहित्यशास्त्र, विज्ञान आदि में अलग-अलग अर्थ में लिया जाता है।

अर्थ-विस्तार

मूल्य का क्षेत्र विस्तृत है। अर्थशास्त्र की दृष्टि से यह शब्द व्यवहार या विनिमय के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। मानव जीवन तो आर्थिक मूल्यों पर ही निर्भर है, क्योंकि हर एक मानव का आर्थिक व्यवहार से सम्बन्ध आता ही है। इसी कारण साहित्य में आर्थिक स्थितियों को भी चित्रित किया जाता है। अर्थ-

अधिकता, अर्थ-अभाव, अर्थ-सीमितता आदि का चित्रण उपन्यासों में परिलक्षित होता है। अर्थ के कारण मानव जीवन-मूल्यों का परिवर्तन इस विषा में स्पष्टतया नज़र आता है।

नीतिशास्त्र मानव के नैतिक आचरण पर विवेचन करने वाला शास्त्र है। मानवीय क्रिया आचरण-व्यवहार, मानव-जीवन की अच्छाइयाँ और मानव-जीवन की सुंदरता आदि की महत्ता इसमें स्पष्ट की जाती है। मानव जीवन को समुन्नत बनाने के लिए उपर्युक्त बाते आवश्यक हैं और इसी हेतु से नैतिक मूल्यों का निर्माण किया जाता है। वर्तमान कालीन उपन्यास साहित्य में भी नैतिक मूल्यों का परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है।

मूल्य शब्द समाजशास्त्र की दृष्टि से भी प्रयुक्त होने लगा है। समाज को समुन्नत बनाने के लिए सामाजिक मूल्यों का निर्माण है। सामाजिक मूल्यों का क्षेत्र विस्तृत एवं व्यापक है। क्योंकि मूल्यों का विवेचन समाज पर ही आधारित रहता है। मूल्यों का विकास समाज पर ही अवलंबित है। अर्थात् समाज द्वारा स्वीकृत की गई धारणाएँ ही मूल्य कहलायी जाती है।

दर्शनशास्त्र में मूल्य की मीमांसा की जाती है। मूल्यों का तात्विक विवेचन दर्शनशास्त्र का एक अंग है। भारतीय दर्शन और पाश्चात्य दर्शन में जो अंतर है, वह संस्कृति के माध्यम से स्पष्ट होता है। भारतीय दर्शन में धर्म, अर्थ और काम को मूल्य के रूप में स्वीकृति दी है और मोक्ष को साध्य मूल्य माना है।

वर्तमान युग को वैज्ञानिक युग कहा जाता है। यद्यपि मूल्य मानव निर्मित है, तथापि उनका प्रयोग विज्ञान के क्षेत्र में भी किया जाने लगा है। डॉ॰पानेरी के अनुसार - "मूल्यों के क्षेत्र में किसी न किसी रूप में अधिकांश तथ्य उपलब्ध हो जाते हैं, जिससे वैज्ञानिक परीक्षण संभव हो सकता है।"[3] परिणामतः विज्ञान में भी यह शब्द प्रयुक्त होने लगा है। वर्तमान युग तो विज्ञान पर ही चल रहा है। मानव जीवन में दिखाई देने वाली आधुनिकता, यांत्रिकता के कारण जीवन मूल्यों में परिवर्तन होने लगा है। नैतिक मूल्यों में तो तेजी से परिवर्तन दिखाई

देता है और इसी वजह से जीवन मूल्यों का सम्बन्ध विज्ञान से भी है, यह स्पष्ट हो जाता है।

मानव मन की जाँच-परख करने वाला मनोविज्ञान मानव की मानसिकता को स्पष्ट करता है। इस विज्ञान के आधार पर मानवकेव्यक्तित्व की विभिन्न बातों को स्पष्ट करने की कोशिश की जाती है। मनोविज्ञानवेत्ता फ्रायड़ ने मनुष्य के "स्व" में - 1. इद् (ID), 2. अहं (Ego), 3. परअहं (Super Ego) को स्वीकृत किया है। "इद्" विद्रोह को प्रस्फुटित करता है और समाज, नीति, अनीति, आदि बातों की बिलकुल परवाह नहीं करता, इस प्रवृत्ति का उद्देश्य प्रकृत वासनाओं की तुष्टि करना है। "यह विवेक रहित एवं अबोध है।"[4] "अहं" मानव मन की विविध वासनाओं की तुष्टि करने के लिए बहिर्जगत को परिवर्तित करने का उपक्रम करता है। "परअहं" के अनुसार नैतिक विचारों की विविध बातें मानव मन में दृढ हो जाती हैं। परिणामतः असामाजिक प्रवृत्तियों को दबाने का प्रयास किया जाता है। मानव चरित्र में वैयक्तिक एवं सामाजिक मूल्यों के मूल में कौन से कारण निहितहैं, यह बात मनोविज्ञान स्पष्ट करता है।

मूल्य-परिभाषा

मूल्य को परिभाषित करने की कोशिश प्राचीन काल से की जा रही है, परंतु आज तक मूल्य की कोई अंतिम परिभाषा नहीं बन पायी है। इसका कारण यह है कि मूल्य मानव मन की धारणा है और वह धारणा जब समाज स्वीकृत करता है तो वह मूल्य बन जाती है। अतः मानव मन की धारणाएँ परिवर्तित होना सहज बात है। मानव निरंतर अपने जीवन को समुन्नत बनाने की कोशिश करता आया है और इस कोशिश में विद्वत जनों ने कुछ मानदण्डों का निर्धारण कर समाज सम्मुख मूल्य की अवधारणा प्रस्तुत की है। स्पष्ट है, मूल्य का मानव जीवन से सम्बन्ध है। मूल्य निर्माता और मूल्य संवाहक मानव ही है। इनसायक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार - "मूल्य जीवन के अस्तित्व एवं उसकी प्रगति के संदर्भ में व्याख्यायित होते हैं।"[5] रोहित मेहता के अनुसार - "मूल्य न तो किसी मशिन द्वारा उत्पादित वस्तु है और न ही किसी सरकार द्वारा निर्मित

कानून। मूल्य तो जीवन के प्रति एक गुण है, अन्तर्दृष्टि है, एक अवधारणा है, एक दृष्टिकोन है।"[6] "मूल्य मानव निर्मित एक ऐसी समाज सापेक्ष अवधारणा है, जो जीवन के विभिन्न अंगों को संस्पर्श करती हुई उसे नियामक बनाने की ओर अग्रसर होती है तथा उसमें परिस्थिति जन्य विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों का सन्निवेश होता है।"[7]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि, "मूल्य मानव निर्मित एक ऐसी धारणा है, जो समाज द्वारा स्वीकृत होने पर मूल्य बन जाती है, जिसमें मानव अस्तित्व और मानव जीवन विकास निहित रहता है। परिस्थितिवश उन धारणाओं में परिवर्तन भी होता रहता है।

मूल्य-अवधारणा

मानव प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ वरदान है। उसे प्रकृति प्रदत्त जो ज्ञानेंद्रियाँ प्राप्त हुई हैं उसी के बल पर मूल्यों की अवधारणा होती रहती है। विवेक सम्पन्न मनुष्य निरंतर मानव जीवन को देखता है। तत्पश्चात उसके मन में चिंतन शुरू हो जाता है। चिंतन से उसके मन में विविध विचार निर्माण होते हैं और इन विचारों के आधार पर वह विविध धारणाएँ बनाता है। ये धारणाएँ जब समाज सम्मुख रखी जाती है, तब समाज उन धारणाओं को स्वीकृति प्रदान करता है

वे धारणाएँ मूल्य बन जाती हैं।

मूल्य की अवधारणा के पीछे तत्कालीन परिस्थितियाँ कारण रूप में रहती है। परिस्थितियों में निरंतर परिवर्तन होता रहता है। परिणामतः मूल्यों में भी परिवर्तन होता है। पुराने मूल्यों का अवलंब लेकर नव-मूल्यों की निर्मिति होती रहती है। वर्तमान काल में पाश्चात्य दर्शन, वैज्ञानिकता, आधुनिकता, यांत्रिकता आदि कारणों से नर-नारी के जीवन-मूल्यों में तेजी से परिवर्तन परिलक्षित होता है।

मूल्य-निर्माण

मूल्यों की निर्मिति एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया की तुलना डॉ॰पानेरी ने वटवृक्ष से की है। उनके अनुसार जिस प्रकार वटवृक्ष की - "एक से अनेक

जड़े फैलती हैं। पुरानी जड़े नष्ट होती रहती हैं, और नई आगे से आगे विकसित होती रहती है।"[8] अर्थात् मूल्य-प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। मूल्यों का निर्माण मूल्यों में परिवर्तन, मूल्य-संक्रमण, मूल्यों का विघटन और नये मूल्यों का निर्माण होता रहता है। मूल्य-निर्माण की प्रक्रिया मानव अस्तित्व तक चलती रहेगी। मानव की परिस्थितियों में जब परिवर्तन होता है, तब उसकी जीवन दृष्टियाँ भी बदल जाती है। ये बदली हुई दृष्टियाँ मूल्य निर्माण के मूल में रहती है। आधुनिक काल में पाश्चात्य दर्शन के कारण तथा वैज्ञानिक दृष्टि के कारण परम्परागत मूल्यों के स्थान पर नव-मूल्यों की निर्मिति होने लगी है। डार्विन के सिद्धान्त ने ईश्वरी सत्ता को नकार दिया और घोषित किया कि मनुष्य तो अन्य जीवों का परिष्कृत संस्करण है। मार्कस् ने समानता का नारा लगाया और परम्परागत धारणाओं को ठुकरा दिया। अतः "अर्थ" के क्षेत्र में एक नया मोड आया। फ्रायड़ ने परम्परागत नैतिक धारणाओं को अमान्य किया और काम भावना का सम्बन्ध मानवीय क्रिया-व्यापारों से जोड़ कर मानव के अंतर्मन का विश्लेषण किया। नीत्शे ने ईश्वर को मृत कहकर व्यक्ति की महत्ता बढाई। संक्षेप में इन विद्वानों के दर्शन के कारण मानव मन परम्परागत धारणाओं को धक्का पहुँचा है और जीवन-मूल्यों में तेजी से परिवर्तन दिखाई दे रहा है।

मूल्य-भेद

मूल्य भेद के बारे में मत-भिन्नता परिलक्षित होती है। विद्वानों ने अपने-अपने विचारों के अनुसार मूल्य भेद किये हैं। मूल्य संसार के विविध क्षेत्रों से जुड़े हुए हैं। अतः सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों के आधार पर मूल्य भेदों को स्पष्ट करने की कोशिश हुई है।भारतीय चिंतन में पुरुषार्थ धारणा को साधनात्मक और साध्यात्मक मूल्य के रूप में विभाजित किया गया है। डा॰हुकुमचन्द राजपाल ने मूल्यों के चार भेद किये हैं - "भौतिक मूल्य, मानसिक मूल्य, सामजिक मूल्य और आध्यात्मिक मूल्य।"[9] डॉ॰रमेशचन्द्र लवनियाने वैयक्तिक मूल्य, समष्टिगत मूल्य, आध्यात्मिक मूल्य, भौतिक मूल्य, नैतिक मूल्य और सौंदर्यमूलक मूल्य को वर्गीकरण के आधार मानकर कहा है - "मानव जीवन के संदर्भ में इन

छह मूल्यों का ही विशेष महत्त्व है।"[10] डॉ.रमेश देशमुख ने मूल्यों को दो वर्गों में विभाजित किया है - 1.शाश्वत मूल्य, 2.परिवर्तनीय मूल्य। शाश्वत मूल्यों में परिवर्तन नहीं होता जैसे कि प्रेम, अहिंसा, दया, सत्य, समर्पण, वात्सल्य, मातृत्व, मातृप्रेम आदि में परिवर्तन नहीं होता। परिवर्तनीय मूल्यों के अंतर्गत उन्होंने जैविक मूल्य और अति-जैविक मूल्यों को रखा है।"[11]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि मूल्य विभाजन एक जटिल कार्य है। मूल्य भेद का अंतिम स्वरूप प्राप्त नहीं हो सकता परंतु अध्ययन सुलभता के लिए मूल्यों के भेद स्पष्ट करना आवश्यक है। अतः मूल्यों को निम्नांकित भेदों के जरिए स्पष्ट किया जा सकता है। यथा -

1. व्यक्तिवादी एवं अस्तित्ववादी जीवन-मूल्य।
2. पारिवारिक जीवन-मूल्य।
3. सामाजिक जीवन-मूल्य।
4. आर्थिक जीवन-मूल्य।
5. राजनीतिक जीवन-मूल्य।
6. सांस्कृतिक जीवन-मूल्य।

1. <u>व्यक्तिगत एवं अस्तित्ववादी जीवन-मूल्य</u>

व्यक्तिवादी जीवन-मूल्य का मतलब है, मनुष्य अपनी-अपनी स्थितियों के अनुसार धारणाएँ बनाता है और उन्हीं धारणाओं को अपने जीवन में महत्त्व देता है। इन धारणाओं में व्यक्ति का भौतिक और भावात्मक पक्ष जुड़ा रहता है। भौतिक पक्ष शरीर से जुड़ा रहता है, जिसमें रक्षा, भूख, जिजीविषा आदि सम्बन्धित मूल्य आते हैं। भावात्मक पक्ष में भावनाओं की प्रधानता रहती है, जिसमें प्रेम, स्वाभिमान, स्वतंत्रता आदि मूल्य आते हैं। इस बौध्दिक युग में हर एक बुध्दिजीवी अपनी-अपनी बुध्दि के बल पर जीवन दृष्टि बनाता है और उसी के अनुसार आचरण करता है। परिणामतः व्यक्तिवादी मूल्यों में भिन्नता नज़र आती है।

व्यक्तिवाद के अंतर्गत एक महत्वपूर्ण विचार यह भी है कि आज का अस्तित्ववाद व्यक्तिवादी दर्शन का विकसित रूप है, क्योंकि अस्तित्ववादी दर्शन में व्यक्तिवादी जीवन दृष्टि को सबसे अधिक समर्थन दिया गया है। अतः अस्तित्ववाद व्यक्तिवाद का परिपोषक है। परिवर्तित जीवन-मूल्यों में अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन अपना विशेष महत्व रखता है। आधुनिक जीवन संदर्भ में अस्तित्ववादी जीवन दर्शन ही वस्तुतः एक परिवर्तित जीवन-मूल्य बन गया है।

2· पारिवारिक जीवन-मूल्य

परिवार से सम्बन्धित जीवन-मूल्यों का समावेश पारिवारिक मूल्यों अंतर्गत आता है। परिवार व्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए कुछ धारणाएँ स्वीकृत की गई है। जिससे परिवार प्रगति पथ पर अग्रसर होता है। पारिवारिक मूल्यों के कारण परिवार के सदस्य सुख-शांति पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकते हैं। परंतु वर्तमान काल में पारिवारिक मूल्यों में भी तेजी से परिवर्तन हो रहा है, इतना ही नहीं तो पारिवारिक मूल्यों में विघटन भी दिखाई देता है। डॉ·महेन्द्रकुमार जैन के अनुसार - "आर्थिक विषमता, व्यक्तिवादी एवं उपयोगितावादी जीवन प्रणाली, पाश्चात्य जीवन प्रणाली का अनुकरण पारिस्परिक कलह और भेदभाव आदि के कारण पारिवारिक मूल्यों में तेजी से विघटन हो रहा है।"[12]

3· सामाजिक जीवन-मूल्य

मानव जन्म से लेकर अंत तक समाज से जुड़ा रहता है। इसी कारण वह समाजप्रिय प्राणी है। जैसे-जैसे उसका सम्पर्क बाह्य जगत से बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसकी दृष्टियाँ भी बदलती रहती हैं। भूख, रक्षा आदि प्रवृत्तियों के साथ-साथ उसमें समाज के प्रति प्रेम, जाति के प्रति प्रेम, देश के प्रति प्रेम आदि दृष्टियों का विकास सहज रूप से होने लगता है। सामाजिक मूल्यों के प्रति विचार प्रकट करते हुए मुखर्जी कहते हैं, "सामाजिक व्यवहार के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यो के साथ गैरमूल्य भी विद्यमान होते हैं। अतः सामाजिक व्यवस्था, सुरक्षा, शांति व प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि इस प्रकार के गैरमूल्यों को पनपने से रोका जाए और पनपे हुए गैरमूल्यों को सुधारा जाए।"[13] वर्तमान काल में बढ़ी हुई

असामाजिकता का मतलब है - सामाजिक मूल्यों का -हास। इस स्थिति में परिवर्तन होने के लिए उच्चतर सामाजिक मूल्यों का निर्माण होना चाहिए। जिससे मानव जीवन की रक्षा एवं सुरक्षा की जा सकती है।

4· आर्थिक जीवन-मूल्य

वर्तमान कालीन युग में अर्थ को सर्वश्रेष्ठ मूल्य के रूप में घोषित किया जाने लगा है। अर्थ के आधार पर नई-नई धारणाएँ समाज में स्थापित होने लगी है और इसी कारण आर्थिक जीवन-मूल्य, मूल्य-भेदकएक अंग बन गया है। पैसों के खातिर आज का मानव समस्त मूल्यों को परिवर्तित करने लगा है। परिणामतः अर्थ के कारण सभी क्षेत्रों में मूल्य परिवर्तित होते दिखाई देते हैं। अर्थ प्राप्ति के लिए मानव नये-नये तरीके ढूँढता है, भ्रष्टाचार इसका सशक्त उदाहरण है। आर्थिक अभाव, आर्थिक शोषण, अर्थ की लालसा, अर्थ की अधिकता के कारण मानव जीवन-मूल्यों में बहुत परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है।

5· राजनीतिक जीवन-मूल्य

राजनीति का सम्बन्ध मनुष्य के अस्तित्व और उसके संरक्षण से है। मानव जीवन के कल्याण हेतु राजनीति को अपनाया गया है। यह नीति कुटिल एवं जटिल होती जा रही है। इस नीति में दिन-ब-दिन नई धारणाओं को प्रश्रय मिलने लगा है। परिणामतः नये-नये राजनीतिक मूल्य उभर रहे हैं। दिन-प्रति-दिन विविध दलों में प्रवेश करना, रिश्वत लेना और देना, झूठे नारे लगाना आदि बातें मानो राजनीतिक मूल्य ही बन गये हैं। वह मूल्य भेद का एक अंग बन चुका है।

6· सांस्कृतिक जीवन-मूल्य

मानव व्यक्तित्व को विकसित करने में संस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। हर एक समाज की अपनी-अपनी संस्कृति होती है। वर्तमान युग में आधुनिकता के कारण तथा यांत्रिकता के कारण सांस्कृतिक मूल्यों में बहुत ही परिवर्तन

दिखाई देता है। यातायात के साधनों के कारण मनुष्य देश-विदेश घूमने लगा है। परिणामतः अन्य स्थानों की संस्कृति के प्रति उसके मन में आकर्षण निर्माण होने लगा है। अतः धर्म, दर्शन, नीति, सौंदर्य आदि सम्बन्धी मूल्यों में परिवर्तन दिखाई देता है। आज पाश्चात्य संस्कृति भारतीय संस्कृति पर हावी होने लगी है। इसी कारण भारतीय सांस्कृतिक धारणाओं में परिवर्तन दिखाई देता है।

परिवर्तन

"परिवर्तन" शब्द का कोशगत अर्थ है - घुमाव, फेरा, हेर-फेर, आदला-बदली, जो किसी वस्तु के बदले लिया जाए। बदलने या बदल जाने की क्रिया या भाव।"[14] परिवर्तन विश्व का अटल नियम है। परिवर्तन के कारण ही निर्माण, विकास और ह्रास होता रहता है। इस संसार में परिवर्तन के कारण सृष्टि का विकास, मानव विकास संभव हुआ है। जिस प्रकार बीज अंकुर में परिवर्तित है, अंकुर से पौधा बन जाता है, पौधे का परिवर्तन पेड में और पेड पर पत्ते फल और फल लगते हैं, जो परिवर्तन के कारण बीज की विकास अवस्था के द्योतक है। यह परिवर्तन प्राकृतिक परिवर्तन है। मानव जीवन में भी कुछ प्राकृतिक परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। जैसे जन्म के बाद बचपन, बचपन के बाद यौवन, यौवन के बाद प्रौढावस्था, प्रौढावस्था के बाद बुढापा, अंत में मृत्यु। मानव जीवन में बुध्दि और भाव के कारण भी परिवर्तन दिखाई देता है।

प्रकृति मानव और जीवन मूल्य इन में चाक्रिक प्रक्रिया दिखाई देती है। मूल्य की अवधारणा, मूल्य का निर्माण, मूल्य परिवर्तन, मूल्य संक्रमण, मूल्य विघटन, और नव-मूल्य निर्माण यह चक्र निरंतर घूमता रहता है। आधुनिक युग में तो मूल्य परिवर्तन तेजी से होने लगा है। डॉ॰ हुकुमचंद राजपाल ने मूल्य परिवर्तन के संदर्भ में लिखा है कि - "वस्तुतः मूल्यों का परिवर्तन नहीं विकास होता है।"[15] लेकिन राजपालजी की यह धारणा सौ प्रतिशत सच नहीं लगती, क्योंकि ऐसे अनेक मूल्य हैं, जिन मूल्यों में कभी-कभी विकास परिलक्षित होता है तो कभी-कभी विघटन भी दिखाई देता है।

मूल्य-संक्रमण

डॉ॰गिरिराज शर्मा के अनुसार - "मूल्य संक्रमण एक सार्वभौमिक सत्य है।"[16] अर्थात् संसार के सभी देशों में मूल्य संक्रमण की स्थिति नज़र आती है। केवल शाश्वत मूल्य अपरिवर्तनीय है। परम्परागत मूल्यों के प्रति अनास्था या अविश्वास निर्माण हो गया है। परंतु उसके स्थान पर कोई नया मूल्य सामने नहीं आया है, यही अवस्था मूल्य संक्रमण अवस्था है, जिसकी वजह से मानव जीवन में उथल-पुथल मची है। आज संसार के सभी क्षेत्रों की परिस्थितियाँ संक्रमण की दौर से गुजर रही है। डॉ॰धर्मवीर भारती का कहना है कि "सम्पूर्ण सभ्यता जिन मूल्यों पर आधारित थी वे मूल्य ही झूठे पड गये हैं।"[17] अर्थात धर्म, नीति आदि सम्बन्धी मूल्यों में प्रश्नचिह्न निर्माण हो गया है। डॉ॰लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का भी कहना है - "नई पीढ़ि के सामने न तो कोई आदर्श ही था न कोई उच्च जीवन-मूल्य ही। पुराने जीवन-मूल्य खण्डित हो चुके थे और उनके स्थान पर नवीन और पुष्ट जीवन मूल्यों की स्थापना नहीं हुई थी।"[18] लेकिन यह कथन पूर्ण सत्य नहीं है, क्योंकि मूल्य संक्रमण अवस्था तो परिवर्तित मूल्य और विघटित मूल्यों के बीच की अवस्था है।

मूल्य-विघटन

आज मूल्यों का विघटन स्पष्टतः नज़र आता है। पारिवारिक, वैवाहिक, नीति-परक मूल्यों में तेजी से विघटन हो रहा है। पुराने मूल्यों का विरोध करना एक प्रकार का फैशन बन गई है। रूढियाँ और परंपराओं का विरोध करना निजी हक माना जा रहा है। परिणामतः मूल्य विघटित हो रहे हैं। धर्म के स्थान पर मानव को बिठाया गया, आस्था के स्थान पर बुध्दि ने अपना आसन दृढ किया और विश्वास का स्थान तर्क ने लिया। इसी कारण मूल्यों में कभी परिवर्तन तो कभी संक्रमण तो कभी-कभी विघटन भी दिखाई देता है। आज विवाह मूल्य में विवाह न करना और मुक्त असंगत को बढ़ावा देना, विवाह-मूल्य विघटन का द्योतक ही है।

मूल्य परिवर्तन के कारण

जीवन-मूल्यों के परिवर्तन के पीछे विविध कारण रहते हैं। परिवर्तन की गति, स्वतंत्रता आंदोलन से तेज हुई है। युगीन परिस्थितियाँ, भारतीय और पाश्चात्य विचार धाराएँ, संविधान, औद्योगिकरण संघटनाएँ आदि ऐसे अनेक कारण हैं, जिसकी वजह से मानव जीवन-मूल्यों में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है।

आधुनिक युग में परम्परागत धारणाएँ सामाजिक परिस्थितियों के कारण परिवर्तित होने लगी हैं। स्त्री और पुरूष दोनों भी नौकरी की तलाश में महानगरों में भटकते नज़र आते हैं। समस्याओं के चक्र में मनुष्य घुमता नज़र आता है। महंगाई, बेरोजगारी, जनसंख्या वृध्दि, आर्थिक-चिंता, आदि कारणों से मूल्य परिवर्तन हो रहे हैं। संयुक्त परिवार टूट रहे हैं, नारी शोषण बढ़ गया है। नारी के व्यक्तित्व विकास में बाधा डालने का प्रयास पुरूष वर्ग कर रहा है। नारी उसका प्रतिकार करती दिखाई देती है। समाज में व्यक्तिवाद का बोल-बाला बढ़ गया है। स्नेह, ममता, दया, परोपकार आदि जीवन मूल्य ढ़हते नज़र आते हैं। अनैतिक आचरण को बढ़ावा मिल रहा है। महानगर, नगर, गाँव आदि में मूल्यों की यह स्थिति दिखाई देती है।

राजनीति में संघर्ष तीव्र रूप में दिखाई देता है। शासन व्यवस्था, भ्रष्ट व्यवस्था बन गई है। नेता लोगों का ध्यान सिर्फ पैसा और कुर्सी पर है। जनहित और राष्ट्रहित की भावना का अभाव नेता के व्यक्तित्व में पाया जाता है। भाई-भतिजावाद, दल-बदलू नीति, सत्ता-स्वार्थ, भ्रष्टाचार आदि बातें राजनीति का अंग बन चुकी है। परिणामतः जनता का शोषण बढ़ गया है। पूँजीपतियों को प्रश्रय मिल रहा है। ज्ञानी तथा विद्वानों ने मौन धारण किया है। राजनीति के कारण तथा अन्यायी, अत्याचारी, राजनीतिक नेताओं के कारण नारी शोषण बढ़ता ही जा रहा है। रक्षक ही भक्षक बन चुके हैं। परिणामतः राजनीतिक मूल्यों में परिवर्तन दिखाई देता है।

"अर्थ" मानव जीवन का सबसे सशक्त पहलू बन गया है। पूँजीवाद को दिन-ब-दिन बढ़ावा ही मिलता जा रहा है। परिणामतः आर्थिक विषमता

निर्माण हो गई है। गरीब अधिकाधिक गरीब होते जा रहे हैं और धनवान अधिक धनवान होने लगे हैं। आर्थिक असंतुलन, महँगाई, टैक्स न चुकाने की प्रवृत्ति, काला धन आदि अनेक समस्याएँ उभर कर सामने आयी हैं। जिसके परिणाम स्वरूप जन-जीवन पर गहरा असर हो रहा है। अर्थ अभावग्रस्त नारी बेची जा रही है, तो पूँजीपति वर्ग की नारी धन अधिकता के कारण उन्मत्त बनी दिखाई देती है। अर्थ के कारण समस्त नीतिमूल्य ठुकराएँ जा रहे हैं।

भारतीय समाज प्राचीन काल से धर्म को प्रधानता देता आया है। परंतु आधुनिक युग में एक ओर धर्म के प्रति नफरत दिखाई देती हे, तो दूसरी ओर धर्म के नाम पर झगडे भी हो रहे हैं। पाश्चात्य विचारधाराओं के कारण भारतीय दार्शनिक धारणाओं को ठेंस पहुँची है। अतः भारतीय लोग भी ईश्वर का अस्तित्व नकारते दिखाई देते हैं। धर्म के साथ-साथ संस्कृति मे भी परिवर्तन हो रहा है। पाश्चात्य नृत्य, संगीत, रहन-सहन भारतीयों को आकर्षित कर रहा है। परिणामतः भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन होने लगा है। धर्म और संस्कृति के प्रति अनास्था बढ़ने लगी है।

मूल्य परिवर्तन में भारतीय विचारधारा ने भी अपना योगदान दिया है। परिस्थितियों में होने वाले परिवर्तन के कारण युगानुकूल नई-नई धारणाएँ जन्म लेने लगी हैं। पारतंत्र्य, युध्द की भयंकरता, आर्थिक विषमता, रूढ़िवादिता, अज्ञान आदि को समाप्त करने के लिए 19 वीं सदी में अनेक महापुरूषों ने ठोस कदम उठाये, जिनमें राजाराम मोहन रॉय, महात्मा फुले और सावित्रीबाई फुले, स्वामी विवेकानंद, महादेव गोविंद रानडे, स्वामी दयानंद सरस्वती, गोपाल कृष्ण गोखले, पं·रमाबाई, डॉ·एनी बेझन्ट, महात्मा गांधी, डॉ·बाबासाहेब आंबेडकर, डॉ·सरोजिनी नायडू आदि का योगदान महत्वपूर्ण है।

पाश्चात्य विचारधाराओं ने भी भारतीय जनमानस पर अपनी छाप छोडी है, यह भी परिलक्षित होता है। मार्क्स, फ्रायड़, सार्त्र, नीत्शे, कामू आदि की विचारधाराएँ भारतीय साहित्य को प्रभावित करने लगी हैं। मार्क्स ने मानवीय प्रगति पर अपना ध्यान केंद्रित किया और वर्ग विहिन समाज की स्थापना करने की कोशिश

की। समान पूँजी, समान अधिकार, समान न्याय पर उन्होंने विशेष बल दिया है। फ्रायड़ की मनोवैज्ञानिक विचारधारा के कारण मानव मन के सूक्ष्माति-सूक्ष्म पहलू संसार के सम्मुख उभर आये। व्यक्तिवादी विचारधारा के कारण व्यक्ति "स्व"केंद्रित बनता जा रहा है। वह अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने की कोशिश कर रहा है। डॉ.शिवप्रसाद सिंह के अनुसार - "आज का भारतीय परिवेश बहुत उलझा और पेचीदा होता जा रहा है। कथनी और करनी में इतना विशाल अंतर है कि उसको पाटने की संभावना भी आज खत्म होती जा रही है। अतः यह लाजिमी है कि इस चिंतन धारा का प्रभाव भारतीय बौध्दिकों पर पडे।" [19] यह कथन सत्य प्रतित होता है। नारी मुक्ति की विचार धारा ने भी जोर पकड़ा है, लेकिन यह विचार धारा पाश्चात्य नारी विचार धारा से अलग है। महात्मा जोतिबा फुले से लेकर डा.बाबासाहब आंबेडकर तक के अनेक विचारकों ने नारी मुक्ति के लिए विविध प्रयास किये हैं।

संविधान के कारण आधुनिक युग में नारी-पुरूष को विविध प्रकार के अधिकार मिले हैं, जिनके कारण पुरूष के साथ-साथ नारी जीवन पर भी बेहद असर हुआ है। समान अधिकार, नौकरी का अधिकार, शोषण के विरोध में अधिकार, दहेज निषेध, राजनैतिक और सम्पत्ति विषयक अधिकार नारी को मिले हैं। इन अधिकारों के कारण उसमें संयम, निर्णय लेने की क्षमता निर्माण हुई है। परिणामतः जीवन-मूल्यों को परिवर्तित करने में संविधान ने भी योगदान दिया है, यह नकारा नहीं जा सकता।

वर्तमान युग को यांत्रिक युग कहा जाता है। विविध उद्योगों का निर्माण इस युग में हो रहा है। तेजी से हुए औद्योगिकरण के कारण महानगरों का निर्माण भी होने लगा है। गाँव के लोग शहर की ओर दौडने लगे हैं। परिणामतः संयुक्त परिवार टूटने लगे हैं। महानगर में नई वर्ग व्यवस्था स्थापित हो चुकी है। धनवान वर्ग नौकरी पेशा वर्ग और निम्न वर्ग इन तीन वर्गों में मानव समाज बंट गया है। कारखानों के मालिक मजदूरों के श्रमों का शोषण कर रहे हैं। साथ ही साथ मजदूर नारी पर अन्याय, अत्याचार कर रहे हैं। परिणामतः नैतिक मूल्यों का -हास

होने लगा है। वैज्ञानिक उन्नति का अनुचित उपयोग बढता जा रहा है। मानव ही मानव का संहारक बन गया है। अतः मानव की मानसिकता में उथल-पुथल मची हुई है। जीवन की निरर्थकता स्पष्ट रूप से सामने आयी है। संक्षेप में औद्योगिकरण के कारण जीवन मूल्य परिवर्तित हो रहे हैं।

मूल्य परिवर्तन की दिशाएँ

परिस्थितियों के अनुरूप मूल्यों में परिवर्तन हो रहा है, जिस प्रकार मूल्य परिवर्तन के विविध कारण होते हैं, उसी प्रकार मूल्य परिवर्तन की दिशाएँ भी विभिन्न होना स्वाभाविक है। अध्ययन सुलभता के लिए कुछ ठोस दिशाओं का निर्धारण करने की कोशिश यहाँ की गई है। शिक्षा, विवाहपूर्व प्रेम और विवाह, संयुक्त परिवार से एकक परिवार, पारिवारिक सम्बन्धों में परिवर्तन, पारिवारिक विघटन, नैतिक मूल्यों में परिवर्तन, नैतिक मूल्यों का -हास, मातृत्व प्रेम में विसंगति, धर्म और ईश्वर के प्रति अनास्था, सद्‌मति के स्थान पर दूर्मति को प्रश्रय, मुक्ति का गलत अर्थ, समाज सेवा की ओर झुकाव आदि अनेक दिशाओं में जीवन-मूल्य परिवर्तन परिलक्षित होता है।

वर्तमान युग में नारी-पुरुष शिक्षा को बढावा मिला है। शिक्षा की वजह से दोनों, सीमित एवं संकुचित क्षेत्र से बाहर निकलकर ज्ञान प्राप्त करने लगे हैं। जिसके कारण उनके व्यक्तित्व में आत्म-सम्मान, आत्म-निर्भरता आदि बातों का समावेश हो गया है। अब वे अपने जीवन के निर्णय खुद लेने लगे हैं। समाज की परवाह न करते हुए शिक्षित लोग जीवन-यापन करते दिखाई देते है।

आज विवाह विषयक निर्णय परिवार वालों के बस की बात नहीं। लडका-लडकी खुद अपने जीवन साथी का चुनाव करते नज़र आते हैं और कोर्ट मैरेज करते हैं। विवाहपूर्व प्रेम करना मानो नई नैतिकता बन गई है, उतनी ही जल्दी से दोनों तलाक लेकर अलग होते हैं, इतना ही नहीं तो पुनर्विवाह की तैयारी भी करते हैं। विवाह एक बंधन नहीं करार बन चुका है।

आज संयुक्त परिवारों का विघटन दिखाई देता हैं। हम दो हमारे दो का नारा प्रभावी बन चुका है। अतः पारिवारिक विघटन तेजी से हो रहा है। पारिवारिक सम्बन्ध में स्नेह, ममता, दया, करूणा आदि मूल्यों का अभाव दिखाई देता है। माता-पिता और परिवार के अन्य बुजुर्गों के प्रति अनास्था दिखाई देती है। वास्तव में परिवार तो जीवन-मूल्यों की ठोस आधारशीला है, लेकिन यह आधारशीला ही खण्ड-खण्ड हो चुकी है। पति-पत्नी सम्बन्ध में भी जो दृढ विश्वास होना चाहिए वह समाप्त होता जा रहा है। दोनों के अहंकार की तीव्रता बढ़ गई है। माँ-बेटा, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-बहन, भाई-भाई आदि सभी पारिवारिक सम्बन्धों में तनाव की स्थिति निर्माण होती जा रही है। परिणामतः पारिवारिक विघटन अटल बनता जा रहा है।

पाश्चात्य दर्शन के कारण धर्म और ईश्वर को नकारने की प्रवृत्ति बढ गई है। डार्विन ने ईश्वर मर गया है, यह घोषित किया है - जिसके परिणामस्वरूप आज के स्त्री-पुरूषों में ईश्वर के प्रति उदासिनता, अनास्था बढ़ गई है। ईश्वर के स्थान पर किसी अन्य, श्रध्दावान बात का निर्माण न होने के कारण मनुष्य दिशाहीन होकर भटकता नज़र आता है। कुण्ठा,अकेलापन, अलगाव, संत्रास आदि समस्याओं में वह घिर गया है। परिणामतः उसकी सद्‌मति समाप्त होती जा रही है और उसके व्यक्तित्व की दूर्मति बढ़ रही है। वह पशु प्रवृत्ति की ओर बढ़ता नज़र आता है। आधुनिकता से आदिमता की ओर वह बढने लगा है।

नैतिक मूल्यों के क्षेत्र में तो बेहद परिवर्तन होने लगा है। परम्परागत नैतिक बन्धनों को नारी-पुरूष अस्वीकार करने लगे हैं। यौन-सम्बन्धों में स्वच्छन्दता और स्वैराचार को बढावा मिल रहा है। नर-नारी दोनों विवाह-पूर्व वैवाहिक जीवन बिताने में संकोच नहीं करते। विवाह के बाद भी दोनों वैवाहिक मूल्यों का आदर नहीं करते। अर्थात् एक-दूसरे के साथ एकनिष्ठ नहीं रहते। फ्रायड़ के विचारों के अनुसार वे प्राकृतिक भूख को जीवन में महत्वपूर्ण मानते हैं। परिणामतः समस्त नैतिक मूल्यों को तिलांजली दी जा रही है।

मातृत्व नारी के जीवन का अविभाज्य अंग माना जाता है। पर आज नारी में मातृत्व के प्रति अनास्था दिखाई देती है, क्योंकि वह शारीरिक सुंदरता और उपभोग प्रवृत्ति को महत्त्व देती है। कभी-कभी कुँवारेपन में माता बनने की लालसा भी नारी में नज़र आती है। उपर्युक्त दोनों बातें परम्परागत मातृत्व के मूल्यों में परिवर्तन करनेवाली ही हैं।

आज की नारी मुक्ति का गलत अर्थ लेती दिखाई देती है। अन्याय, अत्याचार और शोषण से मुक्ति पाने के लिए उसने मुक्ति आन्दोलन शुरू तो किया पर आज पाश्चात्य दर्शन उस पर हावी हुआ है। पाश्चात्य संस्कृति को अपनाने में उसे मुक्ति महसूस होने लगी है। पर यह मुक्ति का गलत अर्थ हैं, क्योंकि वह स्वतंत्रता के नाम पर स्वैराचार करती दिखाई देती है। देह प्रदर्शन करना, पाश्चात्य नृत्यों को अर्जित करना, मद्य प्राशन करना, सिगार पीना आदि बातें नारी स्वतंत्रता का नहीं बल्कि स्वैराचार को प्रकाशित करने वाली है।

वर्तमान काल में अपवाद रूप में समाज की सेवा करने वाले, परोपकार करने वाले तथा देश सेवा करने वाले लोग दिखाई देते हैं। यह जीवन-मूल्य परिवर्तन मूल्य का द्योतक है।

संक्षेप में उपर्युक्त दिशाओं में मूल्यों में परिवर्तन, संक्रमण और विघटन होता है।

उपन्यास विधा में जीवन-मूल्यों का अंकन

हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा उपन्यास ही है, क्योंकि वह सर्वाधिक मुक्त विधा है। उसमें लेखक को न नाटककार के समान रंगमंच की ओर ध्यान देना पडता है और ना ही काव्य सिद्धान्तों का पालन करना पडता है। इसी कारण उपन्यास के जरिए साहित्यकार सम्पूर्ण मानव जीवन अथवा जीवन के अंशिकांश स्वरूप का परिचय दे सकता है। परिणामतः जीवनमूल्यों की अभिव्यक्ति सहजता से उसमें चित्रित हो जाती है। साहित्य की अन्य गद्य विधाओं में अर्थात् कहानी, नाटक, निबंध आदि का कलेवर लघु होने के कारण उसमें जीवन मूल्यों का चित्रण उपन्यास विधा की तरह स्पष्ट रूप से चित्रित नहीं हो पाता। कविता

और नाटक की अपेक्षा उपन्यास में यथार्थ का चित्रण सरलता से हो जाता है। उपन्यास सम्राट प्रेमचंदजी का कहना है कि "उपन्यासों में ऐतिहासिक, दार्शनिक तत्वों का निरूपण किया जाता है इतना ही नहीं तो समाज, नीति, पुरातत्व आदि सभी विषय उपन्यासों में आ जाते हैं। अतः साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा उपन्यास में लेखक अपनी कलम का कमाल दिखा सकता है।"[20] इसलिए आज उपन्यास विधा सशक्त गद्य विधा कहलायी जाती है।

उपन्यासों के माध्यम से समकालीन सामाजिक परिवेश को चित्रित किया जाता है। वर्तमान परिवेश तो संचार माध्यमों के कारण और वैश्विक सन्निकटता के कारण बहुआयामी हो गया है। जीवन की गतिशीलता तेज हुई है। अतः व्यापक जीवन दर्शन का चित्रण, नये मूल्यों का चित्रण, सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तित मूल्यों का चित्रण उपन्यासकारों ने बड़ी कुशलता से चित्रित किया है। यही कारण है कि उपन्यास विधा जीवन मूल्यों के अभिव्यक्ति की सशक्त विधा कहलायी जाती है।

परिवर्तित जीवन-मूल्यों का चित्रण क्यों ?

आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में एक ओर सामाजिक जीवन की असंगतियों को पाया जाता है, तो दूसरी ओर व्यक्ति के आत्मसंघर्ष का चित्रण भी पाया जाता है। वैयक्तिक समस्याएँ और सामाजिक समस्याएँ उपन्यासों का केंद्र बन गई है। जिसकी वजह से मानव जीवन की आंतरिक संसार की वास्तविकता खुलकर सामने आयी है। परिवर्तित जीवन स्थितियों में व्यक्ति अनेक स्तरों पर जीवन यापन कर रहा है। परिणामतः मानवीय जीवन के टूटते-जुड़ते सम्बन्ध, बनते-बिगड़ते मूल्य और जीवन की असंगतियाँ आदि का चित्रण उपन्यास में प्रचुर मात्रा में किया जाता है। इसीलिए परिवर्तित जीवन-मूल्यों की ओर रूचि बढ़ गयी है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर अध्ययन की दिशाएँ दीप्ति खण्डेलवाल के विवेच्य उपन्यासों को परिलक्षित करते हुए परिवर्तित जीवन-मूल्य तथा मूल्यों के अभिव्यक्ति के विविध आयामों को ध्यान में रखकर तय की गयी है जो इसप्रकार है -

दिशा संकेत -

1· दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों का सामान्य परिचय

2· दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों में परिवर्तित व्यक्तिवादी एवं अस्तित्वबोध परक जीवन-मूल्य।

3· दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों में परिवर्तित पारिवारिक सामाजिक तथा अन्य जीवन-मूल्य।

4· दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों में परिवर्तित जीवन-मूल्य अभिव्यक्ति के विविध आयाम।

5· समन्वित मूल्यांकन।

नि ष्क र्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि -

1· मानव प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ वरदान है। वह स्वयं अपने जीवन-मूल्यों का निर्माण करता है और विविध कारणों से इन मूल्यों में परिवर्तन भी करता है।

2· मूल्य मानव निर्मित एक ऐसी अवधारणा है जो समाज द्वारा स्वीकृत होने पर मूल्य बन जाती है, जिसमें मानव अस्तित्व और मानव जीवन निहित रहता है, परिस्थितिवश कुछ धारणाओं में परिवर्तन भी होता रहता है।

3· जीवन-मूल्यों में जो परिवर्तन हुआ है और हो रहा है उसमें प्रमुखतया युगीन परिस्थितियाँ, पाश्चात्य विचारधारा, वैज्ञानिक उन्नति, औद्योगीकरण आदि अनेक बातें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सहयोग देती हैं।

4· मूल्य परिवर्तन में मूल्य अवधारणा, मूल्य निर्माण, मूल्य संक्रमण, मूल्य विघटन और नव-मूल्यों का निर्माण आदि तथ्यों का अंतर्भाव चलता रहता है। मूल्य परिवर्तन गतिशील है।

5· गद्य विधाओं में उपन्यास विधा सशक्त गद्य विधा कहलायी जाती है, क्योंकि उसमें मानव के जीवन-मूल्यों का विविध आयामी चित्रण किया जाता है।

6· दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों में चित्रित नारी-पुरुष पात्रों को परिलक्षित करते हुए परिवर्तित जीवन-मूल्यों के अध्ययन दिशा संकेत हैं - व्यक्तिवादी एवं अस्तित्वबोध परक परिवर्तित जीवन-मूल्य, पारिवारिक, धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तित जीवन-मूल्य।

7· दीप्ति खण्डेलवाल के विवेच्य उपन्यासों में दृष्टिगत होने वाले परिवर्तित जीवन-मूल्यों में व्यक्तिवाद, अस्तित्ववाद, परिवार, समाज, राजनीति, संस्कृति धर्म, नीति आदि का सन्निवेश आगामी अध्ययन का सूचक है।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

1· संस्कृत-हिन्दी कोश - वामन शिवराम आप्टे, दिसंबर 1969, पृ·812

2· आठवें दशक की हिन्दी कहानी में जीवन-मूल्य - डॉ·रमेश देशमुख, प्र·सं·1994, पृ·9

3· स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - डॉ·हेमेंद्र पानेरी, प्र·1974, पृ·9

4· आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन - डा·रमेश दत्त गौड, 1965, पृ·15

5. Encyclopaedia Britanica (Vol.22) by A Society of Gentlemen in Scotland "Values are define in tearms of surviral and enlancement of life", 1968, P.962

6. The Intutive philopohy Rohit Mehata "A value is not a commodity manufactured by maehines nor is it established by a government fail, It is a quality an insight, an attitude, an out look towards life", P.39

7· साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में परिवर्तित नारी जीवन-मूल्य - डॉ·श्रीमती छायादेवी विजयसिंह घोरपडे, अप्रकाशित शोध-प्रबंध, पृ·27

8· स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य संक्रमण - डॉ·हेमेंद्र पानेरी, 1974, पृ·2

9· आधुनिक काव्य में नवीन जीवन-मूल्य - डॉ·हुकुमचंद राजपाल, प्र·1974, पृ·27

10· हिन्दी कहानी में जीवन-मूल्य - डॉ·रमेश लवानिया, पृ·14

11· आठवें दशक की हिन्दी कहानी में जीवन-मूल्य - डॉ·रमेश देशमुख, प्र·1994, पृ·23-24

12· हिन्दी उपन्यासों में पारिवारिक चित्रण - डॉ·महेन्द्र कुमार जैन, प्र·1974, पृ·209

13· उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त - रवीन्द्रनाथ मुखर्जी, प्र·1982, पृ·394

14· नालंदा विशाल शब्दसागर - श्री नवलजी, 1986, पृ·802

15· आधुनिक काव्य में नवीन जीवन-मूल्य - डॉ·हुकुमचंद राजपाल, 1972, पृ·85

16· हिन्दी नाटक : मूल्य संक्रमण - डॉ·गिरिराज शर्मा, प्र·1948, पृ·23

17· मानव, मूल्य और साहित्य - डॉ·धर्मवीर भारती, प्र·1960, पृ·134··135

18· द्वितीय महायुद्धोत्तर साहित्य का इतिहास - डॉ·लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय,प्र·1960, पृ·19-20

19· साहित्य का उद्देश्य - प्रेमचंद, प्र·1954, पृ·54

20· आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद - डॉ·शिवप्रसाद सिंह, प्र·1973, पृ·13-14